ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-12*January- 2022
Innovation The Research Concept

वर्तमान भारत में लैंगिक विभेद और महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता

Gender Discrimination and Need For Women Empowerment in Present Day India

Paper Id: 15562,Submission Date: 10/01/2022, Date of Acceptance: 20/01/2022, Date of Publication: 24/01/2022

मीरा सिंह
एसोसियेट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग,
आगरा कॉलेज, आगरा,
उत्तर प्रदेश,भारत

सारांश

सशक्तिकरण की विचारणा को मात्र लिंग-सबंधों के साथ जोड़ना ठीक नहीं है। यह केवल एक लैंगिक मुद्दा ही नहीं, अपितु यह एक ऐसा विकासात्मक मुद्दा है जो महिलाओं और पुरूषों दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है। मोटे रूप में, यह हासिये पर जो समूह हैं विशेषकर महिलायें, उनसे सम्बन्धित एक मुद्दा है। साथ ही यह उनके आत्म-सम्मान, आत्मविश्वास और शक्ति की अनुभूति तथा विस्तृत संदर्भ में स्व और दूसरों से सम्मान प्राप्ति के अधिकार को योग्यक्षम मानने के भाव का मुद्दा है। सशक्तिकरण व्यक्तिगत, सम्बन्धात्मक और सामूहिक त्रीस्तरीय मुद्दा है।

It is not right to associate the idea of empowerment with mere gender relations. It is not just a gender issue, but it is a developmental issue that affects both men and women equally. Broadly speaking, it is an issue related to marginalized groups, especially women. At the same time, it is an issue of their self-esteem, a sense of self-confidence and feeling of power, and the right to receive respect from themselves and others in the wider context, as being capable of being considered capable. Empowerment is a three tier issue of individual, relational and collective.

मुख्य शब्दः लैंगिक विभेद, सशक्तिकरण, आत्म-सम्मान, सामाजिक न्याय ।
Keywords: Gender Discrimination, Empowerment, Self-Esteem, Social Justice

प्रस्तावना

भारतीय समाज का एक दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष लैंगिक विभेद है। जैविकीय या शारीरिक दृष्टिकोण से तो सम्पूर्ण मानव-जाति में स्त्री और पुरूष के बीच अन्तर देखने को मिलता है, लेकिन लैंगिक विभेद का जो भयानक रूप भारतीय समाज में पाया जाता है, वह अपने आप में अनूठा तो है ही, निराशाजनक, दुर्भाग्यपूर्ण और अनुचित भी है। भारत में लैंगिक विषमता की प्रकृति को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास करें तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट नजर आती है कि पुरूष वर्चस्व की राजनीति विवाह और परिवार और उत्तराधिकार जैसी मूलभूत संस्थाओं से आरम्भ होती है। फिर धर्म, परम्पराओं, नैतिकता व कानूनों की आड़ लेकर इस राजनीति का सम्पूर्ण व्यवस्था में विस्तार किया जाता है। इस व्यवस्था की शिकार महिलाओं को पहले घर की चारदीवारी में दबाया जाता है और फिर उसे आर्थिक, राजनीतिक व कानूनी अधिकारों से वंचित करके उसे कमजोर किया जाता है। इस तरह पुरूष वर्चस्व के साये में एक ऐसा पितृसत्तात्मक पारिवारिक-सामाजिक ढाँचा खड़ा हो जाता है, जहाँ स्त्री का जीवन श्रम, शरीर और उसकी 'कोख' पर पुरूष का अधिकार हो जाता है और स्त्री उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति बनकर रह जाती है। मूल रूप में स्त्री परिवार को ही अपना कर्मक्षेत्र मानकर अपनी समस्त रचनात्मक शक्तियों से उसे सजाती-संवारती है। हर छोटे-बड़े सदस्य की जरूरतों को पूरा करना अपना कर्तव्य समझती है। स्त्री की सारी दुनिया परिवार में ही आकर सिमट जाती है। किन्तु जब परिवार का यही सुरक्षा कवच उसके जीवन का केन्द्र बिन्दु उसके लिए सबसे असुरक्षित और दुःखदायी हो जाता है तो स्त्री के पास 'मन-मसोस' कर जीवित रहने के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य वर्तमान भारतीय परिवेश जो वस्तुतः पितृसत्तात्मक पारिवारिक सामाजिक ढॉचे पर खड़ा है, जहॉ महिला श्रम की कोई आर्थिक गणना नहीं हैं, उन परिस्थितियों में लैंगिक विभेद के परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण की विवेचना।

साहित्यावलोकन

रावत (2011) के अनुसार सन् 1970 के आसपास लिंग (जेन्डर) के अध्ययन में समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक रूझान पैदा हुआ। अभी तक लिंग को मात्र स्त्री एवं पुरूष ने जैवकीय भिन्नता के रूप में देखा जाता था तथा पुरूषत्व और स्त्रीत्व के बारे में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विचार रूढ़िबद्धता से ग्रस्त थे जिनकी यथार्थता से बहुत दूरी थी। इसी संबंध में महाजन एवं महाजन (2015) का मानना है कि पितृसत्तामक सामाजिक संरचनायें एवं संस्थायें उन मूल्य व्यवस्थाओं एवं सांस्कृतिक नियमों द्वारा सुदृढ़ होती हैं, जो स्त्रियों की हीन भावना की धारणा को प्रचारित करती हैं। सिंह एवं सिंह (2011) के अनुसार प्रत्येक संस्कृति में अनेक प्रथाओं के ऐसे उदाहरण विद्यमान हैं जो महिलाओं को दिये जाने वाले निम्नमूल्य व स्थिति को परिलक्षित करते हैं।

वास्तव में मानव-समाज का इतिहास स्त्रियों को सत्ता, प्रभुता और शक्ति से दूर रखने का इतिहास है और इसीलिए प्रत्येक देश, काल, वर्ग जाति एवं धर्म में महिलाओं को पुरूष के समकक्ष न आने देने की संरचनात्मक व सांस्कृतिक बाध्यताएँ बनाई गई हैं। सुश्री राधा ओझा ने इस तथ्य को अत्यन्त मार्मिक ढंग से व्यक्त करते हुए लिखा है, "सामाजिक संरचना में उपस्थित अनेकानेक विभेदों में स्त्री एवं पुरूषों का विभेद बुनियादी है क्योकि यह प्राकृतिक है किन्तु प्राकृतिक विभेद का निहितार्थ लैंगिक असमानता नहीं है। यह मंतव्य लोकतान्त्रिक दर्शन एवं नारी विमर्श में निरन्तर उभरता रहा है। नारीवादी विमर्श ने कुछ बुनियादी प्रश्नों को इस रूप में उठाया कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में स्त्री-पुरूष असमान क्यों है? उनके अंतसंबंध अधिपत्य-अधीनता के अंतर्सबंध क्यों है? और यह स्थिति इतिहास के प्रत्येक दौर में, परिवर्तन के साथ लगभग सभी सभ्यताओं में, कमोबेश अन्तर के साथ कैसे निरन्तर रही है? एतद् असमानता के बीच प्रकृति में नहीं अपितु समाज, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था की शक्ति संरचनाओं में (पितृसंतात्मक व्यवस्था में निहित) है।

सन्तुलित, अर्थपूर्ण सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक संरचना एंव विकास में आधी आबादी की सक्रिय सहभागिता की उपेक्षा नहीं, बल्कि उसे सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। इस बात पर सामान्य सहमति उभर रही है। वस्तुतः नारी अस्मिता एवं सशक्तीकरण का प्रश्न मूल रूप से महिलाओं के लोकतान्त्रिक अधिकारों और उनके मानवाधिकारों का प्रश्न हैं। यह सत्य है कि स्त्री-पुरूष के बीच समानता का सिद्वान्त भारत का संविधान न केवल महिलाओं को समान अवसर प्रदान करता है बल्कि सरकार को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के लिए कदम उठा सके। महिलाओं के वैधानिक सशक्तिकरण का निश्चय ही यह क्रांतिकारी कदम है। राज्य की भूमिका चाहे महिलाओं के कल्याणकारी दृष्टिकोण की रही हो या गरीबी उन्मूलन की अथवा उन्हें समाज अवसर/आरक्षण के माध्यम से शक्ति प्रदान करने की महिला सशक्तिकरण इस दिशा में महत्वपूर्ण रही है। वर्ष 1967 में संयुक्त राष्ट्र संघ की 'महिलाओं के विरूद्व भेदभाव समाप्ति से संबद्व घोषणा' एवं सदस्य देशों से अपने देशों की महिला प्रस्थिति पर प्रतिवेदन की अनुशंसा पर वर्ष 1971 में भारत सरकार की समाज कल्याण राज्यमंत्री फूलरेणुगुहा के नेतृत्व में 'भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति' (सीएसडब्ल्यूआई) का गठन किया गया। इस समिति ने वर्ष 1974 मे ंअपना प्रतिवेदन' 'टुवार्डस इक्वालिटी', सरकार को प्रस्तुत किया। स्वाधीन भारत में महिलाओं की स्थिति पर यह पहला विस्तृत प्रतिवेदन था, जिसमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है-

1. लैंगिक समानता, मात्र सामाजिक न्याय के लिए नहीं अपितु राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए भी आवश्यक शर्त है।
2. स्त्रियों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु उनके रोजगार के अवसरों में वृद्वि को सर्वाधिक प्राथमिकता देना आवश्यक है।
3. प्रजनन क्षमता की वजह से समाज का महिलाओं के प्रति दायित्व बढ़ जाता है। बच्चों के लालन-पालन में माता के साथ-साथ पिता एवं समाज को भी अपने दायित्वों का निर्वहन करना चाहिए।
4. घर के भीतर गृहिणी के कार्य को सामाजिक एंव आर्थिक दृष्टि से उत्पादक मानकर राष्ट्रीय बचत एवं विकास मे उनके योदान को स्वीकार करना चाहिए।
5. वैधानिक समानता को वास्तविक समानता मे ंबदलना।

समिति की रिपोर्ट से यह स्पष्ट हो गया कि महिलाओं की स्थिति में वास्तविक सुधार उस समय तक नहीं होगा जब तक सामाजिक दृष्टिकोणों एंव सस्थाओं में परिवर्तन नहीं होगा। वर्ष 1975 के बाद की अनुशंसाओं के अनुरूप एवं अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय एवं भारतीय महिला आन्दोलन की पुनः सक्रियता के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति मे सुधार के लिए अनेकानेक नीतिगत निर्णय लिए गए छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में पहली बार महिलाओं के विकास पर पृथक अध्याय रखा गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं उसके बाद राष्ट्रीय कार्ययोजना 1992 ने बालिका शिक्षा को मुख्य मुदा बनाया। राजकीय नीतियों मे लैंगिक संवेदनशीलता पर विचार प्रारम्भ हुआ। राष्ट्रीय महिला कोष एवं स्थानीय स्तरों नीतियों मे लैंगिक संवेदनशीलता पर विचार प्रारम्भ हुआ। राष्ट्रीय महिला कोष एवं स्थानीय स्तरों पर स्वंय सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक सशक्तीकरण की दिशा में वैकल्पिक रणनीतियों के प्रयोग किए जा रहे हैं। 73 वंे एवं 74 वें संविधान संशोधनों के माध्यम से पंचायतीराज एवं स्थानीय निकायों मे महिलाओं को दिए गये आरक्षण के फलस्वरूप लगभग 10 लाख महिलाओं की राजनीति भागीदारी सशक्तिकरण की दिशा में मील का पत्थर है। यद्यपि विधानसभाओं एवं लोकसभा मे महिला आरक्षण का मुदा अभी दोहरे राजनीतिक मापदण्डों का शिकार बना हुआ है। नारी सशक्तिरण के वैधानिक प्रयासों की श्रृंखला में भारत सरकार की महिला सशक्तिकरण नीति 2000 तथा घरेलू हिंसा विधेयक 2005 एक उल्लेखनीय कदम है। इसके अन्तर्गत राज्य की सं्ास्थाओं विशेषत पंचायतीराज संस्थाओं स्वंयसेवी संस्थाओं एवं लैंगिक संवेदनशीलता बढ़ाने की आवश्यकता को भी रेखांकित किया गया है।

निश्चित ही यह स्वागत योग्य प्रयास है। हमारे यहां संवैधानिक एवं वैधानिक समानता के माध्यम से महिलाओं को सुदृढ़ आधार प्रदान किया गया है किन्तु महिलाओं की एक बड़ी आबादी आज भी वैधानिक अधिकारों के यथार्थ से दूर है। यूनिसेफ के एक अनुमान के अनुसार भारत मे प्रति वर्ष 30 लाख भ्रूण हत्यायें होती है। यह मूल रूप से मादा भ्रूण हत्या है। इस परिप्रेक्ष्य में गत दो दशक में एक करोड़ कन्या भ्रूण हत्या किए जाने सम्बन्धी ऑकडे भारत व कनाड़ा के संयुक्त शोधकर्ताओं द्वारा जनवरी 2006 में जारी एक अध्ययन रिपोर्ट मे दिए गए है।

हाल ही में भारत के परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा किए गए आंकलन के अनुसार भारत मे प्रतिवर्ष 4 लाख गर्भपात कराए जाते है इनमें लाखों की संख्या में गैरकानूनी गर्भपात भी शामिल है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट 'द एण्ड ऑफ चाइल्ड लेबर विदिन' मे कहा गया है कि विश्व में बाल मजदूरों की संख्या में 11 प्रतिशत की कमी आई है लेकिन भारत की स्थिति जस की तस है। बाल मजदूरी की सबसे घिनौना रूप बाल-वेश्यावृति है। एक अध्ययन के अनुसार 15 प्रतिशत वेश्याएं किशोरवय मे ही इस पेशें मे आ गई। भारत में आईपीसी के अन्तर्गत प्रति वर्ष घटित कुल अपराध लगभग 6 प्रतिशत महिलाओं के प्रति होते है। प्रति वर्ष 31,000 यातना मामले (पति व अन्य द्वारा) 28,000 छेड़खानी के मामले 14,000 अपहरण के मामले 11,000 बलात्कार दहेज प्रताड़ना सम्बन्धी 2,800 मामले एवं एक -दो मामले सती- प्रथा सम्बन्धी आते है महिलाओं की आर्थिक गतिविधि सम्बन्धी कुल आर्थिक गतिविधि का लगभग 50 प्रतिशत है किन्तु आमदनी मे उनका हिस्सा 34 प्रतिशत से अधिक नही हैं प्रशासनिक पदों पर महिलाओं का प्रतिशत 2.3 है।

असमानता के ऑकड़े हर क्षेत्र मे देखे जा सकते है। शिक्षा के अवसर निरन्तर बढ़े है, किन्तु बहुसंख्यक बालिकाओं को लाभ नहीं मिल पाया है। स्वास्थ्य सेवाओं को भी अंतिम व्यक्ति तक नहीं पहुँचाया जा सकता है। गर्भवती महिलओं मे 50 प्रतिशत खून की कमी की समस्या से ग्रसित है एवं एक लाख जीवित मृत्युदर पर 30 प्रतिशत मातृ मृत्युदर है।

औद्योगिक एवं उत्तर-औद्योगिक विकास तंत्र एवं प्रौद्योगिकी ने नवीन अवसरों का सृजन किया है, किन्तु महिलाओं की आर्थिक विपन्नता के आँकड़े बढ़े है। विडम्बना यह है कि विकास की गति के बावजूद महिलाओं की स्थिति में आशानुकूल सुधार नहीं हुआ है, बल्कि कुछ क्षेत्रों में तो स्थिति बदतर हुई है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से महिलाओं के समक्ष चुनौतियों में इजाफा हुआ है। भूमण्डलीकरण के अन्तर्गत, निजीकरण एवं उदारीकरण की नीतियों ने सार्वजनिक उपक्रमों पर व्यय को घटाया है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव निर्धन तबके के आय एवं उपभोग के स्तरों पर पड़ा है। विश्व जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा महिलाएँ है। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ के अध्ययनों द्वारा स्पष्ट हुआ है कि निर्धनता के लैंगिक आयाम निरन्तर बढ रहे है। यह निर्धनता का महिलाकरण है। निश्चय ही इसमें भूमण्डलीकरण के आर्थिक कारकों की भूमिका है। भूमण्डलीकरण से विशिष्ट प्रवीण महिलाओं को अवश्य लाभ मिला है विशेषत सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में। किन्तु बहुसंख्यक महिलाएँ जिनके पास न प्रवीणता है, न संसाधन, हाशिये पर ही है।

लैंगिक समानता महिला सशक्तिकरण का आधार है। विभिन्न महिला संगठन, महिला आन्दोलन, नारीवादी विचारक तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक संगठन एवं कानून स्त्री की स्वतन्त्रता, समानता, अस्मिता, न्याय और गरिमा की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है, किन्तु अथक प्रयासों तथा उपायों के बावजूद लैंगिक असमानता विद्यमान है। इस संदर्भ में डॉ0 राम मनोहर लोहिया का कहना था कि मानवता की आधी पूँजी के रूप में स्त्री का सहयोग लेना विकास के लिए आवश्यक है तथा यह तभी सम्भव है जब हम स्त्रियों के प्रति समानता का दृष्टिकोण अपनाएँ तथा उन्हें पुरूषों के समान व्यवस्था और समाज में स्थान प्रदान करें। डॉ0 लोहिया ने महिलाओं, मुसलमानों व पिछड़े वर्गो के लिए 60 प्रतिशत आरक्षण की मांग रखी थी। यह अत्यन्त दुर्भाग्य एवं विषाद का विषय है कि यदि सैद्धान्तिक स्तर पर आरक्षण अनुचित एंव आपत्तिपूर्ण है तो सभी वर्ग के संदर्भ में होना चाहिए। सिर्फ महिलाओं के संदर्भ में ही क्यो? अन्य वंचित वर्गो के विकास के लिए यदि आरक्षण उचित रणनीति है तो महिलाओं के लिए क्यों नहीं? क्या महिलाऐं वंचित नहीं रही हैं? उल्लेखनीय है कि महिलाओं का 33 प्रतिशत आरक्षण के बिल पर अब तक आम सहमति नहीं बन पाई है। यह सत्य है कि मात्र आरक्षण देने से महिलाओं के स्तर में परिवर्तन नहीं आ जाएगा। ऐसी स्थिति में पुरूषों तथा स्त्रियों को मिलकर समता तथा समृद्धि पर आधारित नव-भारत का अभियान चलाना होगा, अन्यथा सशक्तिकरण का सपना बस एक सपना ही बना रहेगा। यह तभी होगा जब हम सब मिलकर आधी आबादी की दशा सुधारने का संकल्प लें और उसे कार्यान्वित करने का मन बनाएँ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त आलेख के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि महिलाओं की प्रस्थिति में वास्तविक सुधार उस समय तक नहीं होगा जब तक कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दृष्टिकोणों एवं संस्थाओं में परिवर्तन नहीं होगा। ऐसी स्थिति में पुरूषों तथा महिलाओं को मिलकर समतामूलक समृद्धि भारत के निर्माण का अभियान चलाना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ एवं अग्रवाल, भरत-समाजशास्त्र, एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन, आगरा।*
2. *महाजन, धर्मवीर एवं महाजन, कमलेश-समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर दिल्ली, 2015.*
3. *सिंह श्यामधर, एवं सिंह मीरा- सामाजिक समस्याओं का समाजशास्त्र,सपना अशोक प्रकाशन, रामनगर, वाराणसी, 2011.*
4. *सिंह श्यामधर-अपराधशास्त्र के सिद्वान्त सपना अशोक प्रकाशन,रामनगर, वाराणसी, 2008*
5. *कुमारी सारथी- महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका 2020, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस एकेडेमिक स्टडीज: 2(1): 305-308*
6. *तिवारी, आर0पी0 (1999): भारतीय नारी: वर्तमान समस्यायें एवं समाधान, नई दिल्ली।*
7. *देवपुरा प्रतापभल: महिला सशक्तिकरण में शिक्षा का महत्व, कुरूक्षेत्र, अंक 5 मार्च 2006.*
8. *रावत हरिकृष्ण: उच्चतर समाजशास्त्र शब्दकोष, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2011।*